बात बोलेगी

शमशेर बहादुर सिंह



संभावना प्रकाशन
हापुड़-२४५१०१

बात बोलेगी (कविता संग्रह) / © शमशेर बहादुर सिंह / प्रकाशक : संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़-२४५१०१ / मुद्रक : गणेश कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२ मे मुद्रित / प्रथम संस्करण : १९८१ / आवरण : करुणा निधान / मूल्य : रु० २८.००

BAT BOLEGI (Poems) by Shamsher Bahadur Singh

First Edition - 1981 Rs 28.00

अनुक्रम

[खण्ड एक : सन् १९४०—'४७]

लेकर सीधा नारा

बंगाल का काल

राष्ट्रीय संघर्ष तेज होता गया

हैवाँ ही सही

[खण्ड दो : सन् १९४७—'७७]

बात बोलेगी

दुनिया में अमन के लिए

सम्प्रति कविता, कवि और इतिहास

खण्ड एक

अपने आदरणीय मित्र
'हंस' के तीन सम्पादकों—
शिवदानसिंह चौहान,
डॉ० रामविलास शर्मा
और
अमृतराय—
को
सप्रेम

लेकर सीधा नारा

['४०-'४१]

फिर वह एक हिलोर उठी

["स्वतन्त्रता-दिवस" की एक प्रभात फेरी, इलाहाबाद]

फिर वह एक हिलोर उठी—
 गाओ !
वह मजदूर किसानों के स्वर कठिन हठी !
कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ !
उनके मिट्टी के तन में है अधिक आग,
 है अधिक ताप :
 उसमें, कवि हे
 अपने विरह-मिलन के पाप जलाओ !
काट बूर्जूआ भावों की गुमठी को—
 गाओ !
अति उन्मुक्त नवीन प्राण स्वर कठिन हठी !
 कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ !

 सड़े-पुराने अंध कूप गीतों के
 अर्थहीन हैं भाव, मूक मीतों के :—
उन्हें अपरिचय का लांछन दे बिल्कुल आज भुलाओ !
 नूतन प्राण-हिलोर उठी !
 तुम, वह जिस ओर उठी, उठ जाओ !
 कवि हे ! ......

[१९४०

लेकर सीधा नारा

लेकर सीधा नारा
कौन पुकारा
अन्तिम आशाओं की संध्याओं से ?

पलकें डूबी ही सी थीं—
पर अभी नहीं;
कोई सुनता सा था मुझे
कहीं;
फिर किसने यह, सातों सागर के पार
एकाकीपन से ही, मानो—हार,
एकाकी उठ मुझे पुकारा
कई बार ?

मैं समाज तो नहीं; न मैं कुल
जीवन;
कण-समूह में हूँ मैं केवल
एक कण।
—कौन सहारा !
मेरा कौन सहारा !

[१९४१, काशी

जीवन की कमान

ढीली इस जीवन की कमान
कसनी है :
छूटेंगे जिस पर कड़े प्राण के
तीर, जो कि
भेदेंगे
सातों आसमान ।

प्रत्यंचा है पत्थर-सा दिल
—गुमसुम;
जन्मों-जन्मों के स्वप्न कठिन
तरकश में हैं ।
टंकार से उठेगा नभ हिल ।

टूटेंगे अरि-दल के पहाड़
के पहाड़
जब जन-बल का सागर
दहाड़ कर उट्ठेगा,
करता विचूर्ण फ़ासिस्ट हाड़ ।

जनता के बल का महाबाण
शक्तिस्फुलिंग,
जो मध्य-युगों का परित्राण
कर छूटेगा
बन नव-युग का जलता प्रमाण ।

[१९४१

बंगाल का काल

दु:ख नहीं मिटा

दु:ख नहीं मिटा ।
घिरा और घुमड़ा आकाश ।
फिर बरसा दिन भर । खुला नहीं ।
बहीं हवाएँ भी बुँदियाँ भर-भर ।
झोंके भी हृदय उड़ाते हुए चले ।
पर खुला नहीं राग ।
सफल नहीं हुआ, आह,
मन का अनुवाद !

झूमे वन के वन हर-हर कर । नद बहे ।
घन घहरे । लहरे मन-उद्यान ।
सीझ गये पत्थर ।
—कठिन किन्तु कवि-उर-प्रस्तर था
जो उष्ण रहा तपता ।

कौन वह सावन की घड़ी
होगी,—जब मन के झूलों पर
फिर बरखा की पेंगें मल्हार
गायेंगी···मन के झूलों पर फिर
बरखा की पेंगें मल्हार ?

× ×

आह आज प्लावन में सूखा यह तृण !
तुझे चुकाना है, ओ मेघराज,

प्यासों का ऋण !
कहाँ राज अपने जन का !......आज—
प्रस्तर-युग-सी काली धरती का
टूटेगा प्रस्तर-तन धरती का !
जन-जन का...बिखरेगा मोती सा मन !
क्यों न आज,
किन्तु, गिरे धनिकों की छाती पर गाज
अभी आज !

किसका होगा तब यह धन, समाज ?
किसके दाँतों में तब होगा इस मिट्टी का कन ?'

अंगारा बनकर तब छितरेगा यही नाज
गलियों-गलियों सड़कों-सड़कों
गाँवों-गाँवों मुल्कों-मुल्कों में
लूटेगा
आवारा बनकर यह
स्व राज !

होगा तब भूखों का राज !
होगा तब नंगों का राज !
होगा तब......

× ×

अपनी ही हड्डी बक्तर जिनका
मदिरा जिनकी अपना खून
रोटी का सपना अन्तर जिनका
प्यासे शोले दोनों जून
बरसायेंगे जिनके सर पर
प्रतिहिंसा का खून !

आयेंगे ऐसे अधिकारी भी
विप्लव-व्यापारी भी
ओ मेरे भोले बादल !

दिखलायेगा तब तू अपना असली रूप
प्यासे कवि-मन के अनुरूप !

[१९४३

अकाल

भूख
    अनाज
मुनाफ़ाखोर का
अनाजचोर का
    बिल्कुल छिपा-सा, निर्जन में,
        अँधेरा बाज़ार :
    जिसके चारों ओर गवरमेंट
    कंकरीले रुपै लिए दान-समितियाँ
    और भूखी लाशों से दूर,
    सूने-सूने से खिचड़ी-रसोइयों वाले,
    हम-तुम, वे, सब
    इस मौन तांडव के चारों ओर
    असहाय-से चक्कर लगा रहे हैं,
    समझ नहीं पा रहे है,
    कुछ सोच तक नहीं पा रहे है,
    केवल कुछ कर पा रहे है ऐसे
    कि मानों कुछ कर पा नहीं रहे है।

मृत्यु का यह नया रूप है स्पष्ट
    हमारे जीवन के बीच
लय-ध्वनि स्वर-संकेत और संज्ञा से हीन
अभूतपूर्व ।

    भारत के वीर हम
    दुश्मन के सीने में

विजय का निश्चित भी तीर हम;
भूखी लाशों की दीवार के रक्षक;
खुली खुली खोखली आँखों के द्वार पर प्रहरी;
धोबी की रस्सियों पर लटकी
सूखती चोलियों के-से स्तनों की
लाज रखने वाले हम
तेल की दूकान पर बँधी-लटकी
झिल्ली की कुप्पियों के-से
रुंड-मुंड छोटे-छोटे
असंख्य बाल समूहों के पोषक हम;

उन्नत मस्तक भारतवासी
अपने ही दीर्घ निर्घोषों से मानों
मारवाड़ का मरुवातावरण कंपित कर देंगे हम :
आज मरना सीख रहे हैं
इस मूक शांत युद्ध में,
अपनी शत्रु भयविहीन सड़कों और गलियों में—
जहाँ कुत्तों का जीवन भी दीर्घतर लगता है,
स्पृहनीय; केवल
अपना ही दयनीय।

क्यों जन्मा था मनुष्य
बीसवीं सदी के मध्याह्न में
यों मरने के लिए ?—
झुलसा-सा पतझड़ का पत्र

अकाल

भूख
        अनाज
मुनाफ़ाख़ोर का
अनाजचोर का
        बिल्कुल छिपा-सा, निर्जन में,
                अँधेरा बाजार :
        जिसके चारों ओर गवरमेंट
        कंकरीले रुपै लिए दान-समितियाँ
        और भूखी लाशों से दूर,
        सूने-सूने से खिचड़ी-रसोइयों वाले,
        हम-तुम, वे, सब
        इस मौन तांडव के चारों ओर
        असहाय-से चक्कर लगा रहे है,
        समझ नही पा रहे हैं,
        कुछ सोच तक नही पा रहे हैं,
        केवल कुछ कर पा रहे है ऐसे
        कि मानों कुछ कर पा नहीं रहे हैं।

मृत्यु का यह नया रूप है स्पष्ट
        हमारे जीवन के बीच
लय-ध्वनि स्वर-संकेत और संज्ञा से हीन
अभूतपूर्व ।

        भारत के वीर हम
        दुश्मन के सीने में

विजय का निश्चित भी तीर हम;
भूखी लाशों की दीवार के रक्षक;
सूली खुली खोखली आँखों के द्वार पर प्रहरी;
धोबी की रस्सियों पर लटकी
सूखती चोलियों के-से स्तनों की
लाज रखने वाले हम
तेल की दूकान पर बँधी-लटकी
झिल्ली की कुप्पियों के-से
रुंड-मुंड छोटे-छोटे
असंख्य बाल समूहों के पोषक हम;

उन्नत मस्तक भारतवासी
अपने ही दीर्घ निर्घोषों से मानों
मारवाड़ का मरुवातावरण कंपित कर देंगे हम :
आज मरना सीख रहे हैं
इस मूक शांत युद्ध में,
अपनी शत्रु भयविहीन सड़कों और गलियों में—
जहाँ कुत्तों का जीवन भी दीर्घतर लगता है,
स्पृहनीय; केवल
अपना ही दयनीय।

क्यों जन्मा था मनुष्य
बीसवीं सदी के मध्याह्न में
यों मरने के लिए ?—
झुलसा-सा पतझड़ का पत्र

चियड़ों का बादल-सा
धूमिल सध्याओं में,
हवा का निरीह कंप केवल !

वीर बलिदान की सदी है यह !
हमी उठेंगे क्या ?—
वीर बलिदान की सदी है यह—
नानाविध पूर्ण शक्तिशाली
समृद्ध ?
स्वर्ण-इतिहासों के सृष्टा
हमी बनेंगे क्या ?
अखिल उत्पादन के अमर अधिकारी
विश्व राष्ट्रों के सग साभिमान
हमी बढ़ेंगे क्या ?

[१६४३

भाव थे जो शक्ति-साधन के लिए,
लुट गए किस आन्दोलन के लिए
        यह सलामी दोस्तों को है, मगर
        मुट्ठियाँ तनती हैं दुश्मन के लिए !
धूल में हमको मिला दो, किन्तु, आह,
चालते हैं धूल कन-कन के लिए।
        तन ढँका जाएगा धागों से, परन्तु
        लाज भी तो चाहिए तन के लिए।
नाज पकने पर खुले आकाश से
बिजलियाँ गिरती है निर्धन के लिए।
        संकुचित है आज जीवन का हृदय,
        व्यक्ति-मन रोता है जन-मन के लिए।

[१६४३

राष्ट्रीय संघर्ष तेज़ हो गया

['४४—'४७]

य ' शाम है

[ग्वालियर की एक ख़ूनी शाम का भाव-चित्र। लाल झंडे, जिन पर रोटियाँ टँगी है, लिए हुए मजदूरों का जुलूस। उनको रोटियों के बदले मानव-शोषक शैतानों ने—ग्वालियर की सामन्ती रियासती सरकार ने—गोलियाँ खिलायी। उसी दिन—१२ जनवरी, १९४४—की एक स्वर-स्मृति।]

य ' शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का।
लपक उठीं लहू-भरी दरातियाँ,
—कि आग है:
धुआँ धुआँ
सुलग रहा
गवालियार के मजूर का हृदय।

कराहती धरा
कि हाय-मय विषाक्त वायु
धूम्र तिक्त आज
रिक्त आज
सोखती हृदय
गवालियर के मजूर का।

गरीब के हृदय
टँगे हुए
कि रोटियाँ लिए हुए निशान
लाल लाल

जा रहे
किचल रहा
लहू-भरे गवालियर के बजार में जलूस :
जल रहा
धुआँ धुआँ
गवालियार के मजूर का हृदय ।

[१९४४

बम्बई में वर्ली के ७० किसानों को देखकर

[थाना जिले के इन वीर आदिवासियों ने अपनी किसान सभा के नेतृत्व में बम्बई के क्रूर जमींदारों और पूंजीवादी नौकरशाहों के विरुद्ध सन् १९४५-४६ में एक क्रान्तिकारी संघर्ष किया जो काफ़ी हद तक सफल हुआ।]

ये वही बादल घटाटोपी
　　बिजलियां जिनमें चमकतीं ?
खून में जिनके कड़क ऐसी, कि
　　—गोलियां चलतीं ?

दूर तक नंगे पहाड़ों पर
　　घास के मैदान।
दूर तक जंगल बयाबानी
　　जहां के ये प्राण।

इनकी आंखों में तड़कती धूप
　　सख्त बंजर की।
इनकी वाणी में हमारी मूक
　　बोलती धरती।

कश्मीर

[देशी राज परिषद् का संघर्ष सन् '४५-'४६ में]

"छोड़ दो कश्मीर ! /
—बैनामा छियालिस का
तोड़ दो !
डोगरे—परदेसियो' !
अंग्रेज के काले गुलामो,
छोड़ दो जन्नत हमारी
छोड़ दो कश्मीर !"

मौन अपना तोड़कर अनुतप्त मट्टी चीखती है,
कांप कर 'डल' खून की लहरें उठाती,
एक ही नारा जगाती, गूंजती है :
"डोगरे परदेसियो, अब छोड़ दो कश्मीर
बैनामा फ़िरंगी ताजरों का—
तोड़ दो !"

२

आज पृथ्वी का धरातल
शिरों पर अररा न दे निज गर्व-गुम्बद
या कहीं नभ का अहम्मद रोष ही फट पड़े;
झेलम, कौन जाने,
भीम धारा बन, उछल कर, ढहा दे वे महल,
पानी पर खड़े जो, मध्य युग के शाप से; या स्वयं

गजपत दुर्ग ही, विक्षिप्त हस्ति समान, हिल
भू-डोल-सा, सामन्त-भव-कुल ध्वस्त कर दे;—
इसी से डर, अपशकुन पर अपशकुन ही देख,
श्रीहत, भीत मिस्टर ए० महाराजा हरीसिंह
क्रूर मन्त्री काक
शिक्षाशून्य गंगाराम गृहमन्त्री व अन्य अनेक
ऐसे 'महत् क्षण' में रुकें कैसे, छोड़ अपनी टेक,
शोषण, दमन, अत्याचार की—जब सन्धि-सम्मत
सत्व की उनकी पुरानी धाक
जनता के हृदय पर पूर्ववत् रखने जमाये,

केबिनेट के तीन जन आये; कहा—"लो आज
देशी राज्य में स्वाधीनता!
स्वाधीन···आसन, ताज!
केवल केन्द्र परिषद् में स्वयं महराज
अपना भेज दें प्रतिनिधि
कि जो हो कूटनीति-प्रवीण !"

—ऐसा देख महत् विधान
कैसे रुकें जम के दूत
यद्यपि सकल नेता, व्यस्त,
कांग्रेस, लीग, वैवल, मिशन,
चारों ग्रूप लगभग पस्त :
दुस्तर 'सीट्स' का सन्तुलन !

(—जन-आहूत महत् मुहूर्त में
संघर्ष का आह्वान !)
देशी दमनकारी धूर्त्त,
जम के दूत, कैसे रुकें ?

व्यस्त हैं नेता समस्त महान :—
केन्द्र-परिषद् की समस्याएँ
विषम गतिरोध,
—लीग कांग्रेस में परस्पर शक्ति के सन्तुलन में
"अन्याय"···
लार्ड वैवल की सभा में शोध-अनुसन्धान···
व्यस्त है नायक हमारे !
देश का संघर्ष भी रुक जाय ?
जन-संघर्ष का आहूत महत् मुहूर्त भी
टल जाय ?

अखिल देशी राज्य जन-परिषद् सभा में
वीर बख्शी ने खड़े होकर कहा—"सरदार,
हमें तो लड़ना, हमारी जीत हो या हार !
यह न समझो, हमें बाहर की मदद दरकार !

"अखिल परिषद् करे निर्णय मात्र :
वह स्वयं है, या नहीं, संघर्ष को तैयार।
हमें तो लड़ना, हमारी जीत हो या हार !"

"जो हमारे शेख अब्दुल्ला, हमारे लोकनायक
विश्व नेहरू को स्वयं
अपने परम प्रिय देस में अपमान का बन्दी बनाती
आज परिषद् के हृदय पर महाराजों के दमन की
क्रूर छाया वह
विश्व नेहरू स्वयं दें जहाँ चाहें,
किन्तु हम स्वीकार कर सकते नहीं यह न्याय का
स्वातन्त्र्य के अधिकार का अपहरण।
लड़ना ही हमें,
फिर जीत हो या हार!"

× ×

× ×

(अपूर्ण)

[१९४६

(—जन-आहूत महत् मुहूर्त में
संघर्ष का आह्वान !)
देसी दमनकारी धूर्त्त,
जम के दूत, कैसे रुकें ?

व्यस्त हैं नेता समस्त महान :—
केन्द्र-परिषद् की समस्याएँ
विषम गतिरोध,
—लीग कांग्रेस में परस्पर शक्ति के सन्तुलन में
"अन्याय"···
लार्ड वैवल की सभा में शोध-अनुसन्धान···
व्यस्त हैं नायक हमारे !
देश का संघर्ष भी रुक जाय ?
जन-संघर्ष का आहूत महत् मुहूर्त भी
टल जाय ?

अखिल देशी राज्य जन-परिषद् सभा में
वीर बख्शी ने खड़े होकर कहा—"सरदार,
हमें तो लड़ना, हमारी जीत हो या हार !
यह न समझो, हमें बाहर की मदद दरकार !

"अखिल परिषद् करे निर्णय मात्र :
वह स्वयं है, या नहीं, संघर्ष को तैयार।
हमें तो लड़ना, हमारी जीत हो या हार !"

"जो हमारे शेख अब्दुल्ला, हमारे लोकनायक
विज्ञ नेहरू को स्वयं
अपने परम प्रिय देश में अपमान का बन्दी बनाती
आज परिषद् के हृदय पर महाराजों के दमन की
क्रूर छाया वह
विज्ञ नेहरू स्वयं दें जहाँ चाहें,
किन्तु हम स्वीकार कर सकते नहीं यह न्याय का
स्वातन्त्र्य के अधिकार का अपहरण।
लड़ना ही हमें,
फिर जीत हो या हार!"

× ×

× ×

(अपूर्ण)

नाविक 'विद्रोहियों' पर बमबारी : बम्बई, १९४६

[अल्जीरियाई वीरों को समर्पित, १९६१]

लगी हो आग जंगल में कहीं जैसे,
हमारे दिल सुलगते हैं।

हमारी शाम की बातें
लिये होती है अक्सर जलजले महशर के; और जब
भूख लगती है हमें तब इन्कलाब आता है।

हम नंगे बदन रहते हैं झुलसे घोंसलों से,
बादलों सा
शोर तूफ़ानों का उठता है—
डिवीजन के डिवीजन मार्च करते हैं,
नये बमबार हमको ढूंढते फिरते हैं...

सरकारें पलटती है जहाँ हम दर्द से करवट बदलते हैं।
हमारे अपने नेता भूल जाते है हमें जब,
भूल जाता है जमाना भी उन्हें, हम भूल जाते हैं उन्हें
खुद।

और तब
इन्क़लाब आता है उनके दौर को गुम करने।

जहाज़ियों की क्रान्ति

[शान्ति ? पत्थर । मौन ।...चोट
आग...वे फ़ायर ब्रिगेड वाले । नाश ।
जंग जम कर । लाठियाँ । पत्थर ।
...चोट ।
मौन । फिर स्वप्न, स्वप्न...
क्रोध, उत्तेजन ।
—विलास-भाव,
प्रवास-अपनाव ।
खोया हुआ
दिन । शाम, रात-सी ।
दिन—शाम-सा ।
रोया हुआ
मन ।]

......शहीद
कहीं
हुए हैं, लोग ।
अपने
लोग ।

बम्बई
फिर बना
सुहाग
बलि-वेदी का
रायल इंडियन नेवी का
फाग
खिला ।

सपने रँगे
धूम
रक्त
की फुलझड़ियों से;
गोलियों की
लड़ियों से।
मांस-मज्जा में
टठ्-ठ्ठायें...!!

२

घुले बादल
काले।
मतवाले
दल के दल
निकले
तिरंगे
कहीं हरे,
लाल
लिये झंडे
"जय हिन्द !" "जय हिन्द !"
"हमारी माँगें मंजूर हों !"
"आज़ाद हिन्द फ़ौजी छूटें !"
"गुलामी के बन्धन टूटें !"

महल लुटे
जहाँ राज
गुंडों का था।
उत्तर में जलूस चले
रोष-भरे
संगठित-व्यवस्थित।
दक्खिन नगर में
हीरे-लाल-पत्थर लुटे,
नाज लुटा बिखरा,
मवालियों ने खुल खेला।

उत्तर बम्बई में
गोलियाँ चलीं,
लोग मरे,
मजूरों ने
अस्पताल भरे!
दक्खिन नगर में
एक ओर
नाविकों की जंग
टामियों से
दम्भ से
साम्राज्य से
और एक ओर
लूट-मार
अपने ही धन-जन की।

अपने ही नगर का
ध्वंस।

३

नेताओ, आओ!
इन नाविकों को
इन तूफ़ानी लहरों को
आ कर समझाओ—
कि शान्त हों
साम्राज्यवाद की मौन, खड़ी सेना-सी
शान्त हों!!!
इन तूफ़ानी लहरों में
चमक उठी हैं
मजूरों की आँखें
खुल उठे हैं
बम्बई की
जनता के
दाँत;
बिफर उठे हैं
—एक साथ
सभी वर्ग औ' जातियों के
क्रोध भरे
सीने।

महल लुटे
जहाँ राज
गुंडों का था।
उत्तर में जलूस चले
रोष-भरे
संगठित-व्यवस्थित।
दक्खिन नगर में
हीरे-लाल-पत्थर लुटे,
नाज लुटा बिखरा,
मवालियों ने खुल खेला।

उत्तर बम्बई में
गोलियाँ चलीं,
लोग मरे,
मजूरों ने
अस्पताल भरे!
दक्खिन नगर में
एक ओर
नाविकों की जंग
टामियों से
दम्भ से
साम्राज्य से
और एक ओर
लूट-मार
अपने ही धन-जन की।

शान्ति के छींटे बरसाये !
        आदेश दिया :
                "घृण्य यह अहिंसा !
                दूर ले जायगी हमें यह
                स्वातन्त्र्य-पथ से;
स्वर्ण-रजत स्वातन्त्र्य-पथ से !
                अथ से लेकर इति लौं
                घृण्य यह अहिंसा !

"काम यह हमारा—कांग्रेस का—नहीं है !
होगा लगाया "जय हिन्द !"का नारा किसी ने तो—
फहराया होगा किसी ने तिरंगा भी, तो—यह,
काम यह, हमारा—कांग्रेस का—नहीं।

किसी ने जाने क्यों भड़काया उन्हें
जो शान्त, मौन, अपना अपमान सहे जाते थे !"

×   ×

        जनता ने दाँत भींच लिए और
            चुप हो रही।

×   ×

"जय हो नेताओं की !…"

"हिन्दुस्तान आजाद हो !"
"इन्क़लाब जिन्दाबाद !"

देख अपने लीडरों को शोक मत कर

देख अपने लीडरों को
शोक मत कर।
देश ये लीडर नहीं।
ये सभाएँ ही नहीं हिन्दोस्तान।
ये पताकाएँ नहीं उसका निशान।

—जो कि मरता और जीता,
पुनः मरता, पुनः जीता
वही जन जयकाम।
उसको नाम।—
उसका मान।

आज :
सत्य वाणी का
क्षीन है।
घन घटाओं में गभीर
नाद
(सुनो, तो)
नवल भी प्राचीन है;
स्पष्ट,
चाहे मौन आशा-सा।
रक्त में आह्वान है वह
साम्यवाद तंत्र
का

पुनीत
गान।

आज
भारत का हृदय—
साम्यवादी, अनोन्मादी, धीर, कर्मठ
जन-चरित्र, कि···
उच्चपर्णी 'अहिंसात्मक' शेष
भारत का हृदय ?

× ×

नीति का आधार तो
जन का हृदय
व्यापक।

× ×

शोक मत कर
देख अपने लीडरों को
द्वेष-कटुता-पूर्ण तर्क-विशून्य
तुच्छ
दम्भ !

आज
गत-बलिदान-अर्जित

पुण्य इनका
अहम्मन्य
विरोध हिंसा पूर्ण ।
दर्प केवल
अमर जनता का
अमर ।
शेष केवल
निमिष का उन्माद भर

[१९४६

हैवाँ ही सहा

['४५,' ४६,' ४७]

यह क्या सुना है मैंने

[बम्बई के दंगों की पराकाष्ठा . १९४६]

[नोट—वस्तुस्थिति की सूचना मुझे एक अत्यन्त विश्वस्त पत्रकार के मुख से सुनने को मिली थी। सुनते ही जो प्रतिक्रिया मेरी हुई उसी की कुछ अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है।

घोर साम्प्रदायिक दंगों के दौरान (१९४६) जब उपलब्ध "मौक़ों" से "फ़ायदा" उठाकर लोग अपने-अपने व्यक्तिगत प्रतिद्वंद्वियों और दुश्मनों को "धर्म" और "मजहब" के नाम पर गुण्डों और मवालियों को रुपये दे-देकर खत्म करवाने में लगे थे, तो हद यहाँ तक पहुँच गयी थी कि ये गुण्डे पन्द्रह-पन्द्रह रुपये'''और अन्त में दो-दो रुपये तक के लिए भी हत्याएँ करने को तैयार हो जाते थे · क्योंकि साम्प्रदायिक हत्याओं का बाजार वैसे ही गर्म था। अत. हत्याएँ करवाने वालों ने इन दो-दो रुपयों के साथ कुछ "शर्तें" भी जोड़ दी थीं! जिनका पालन करना अनिवार्य था: मसलन् यह कि नियत स्थान और समय पर ही "काम" हो! यह मनुष्य नामधारी हिंस्र पशु के पतन की पराकाष्ठा थी।]

यह क्या सुना है मैंने कि 'दो रुपये सर है आज!!'
—कुछ शहर बम्बई की ज़बानी खबर है आज!

पन्द्रह से दो पे गिर गया बाजार क़ौम का!
क्या सस्ती फ़िरक़ेवार शहीदों की दर है आज!!

दोनों तरफ़ से 'माल' का होता है ऑरडर!
'मजहब' पे और 'धर्म' पे गहरी नजर है आज!!

जिस 'खून' की है माँग वही खून हो तो हो;—
वर्ना तो जान मारने वाले के सर है आज!!

'सौदे' की शर्त यह है कि हो 'काम' वक़्त पर !
जो वक़्त जान पर है वो ईमान पर है आज !!

हठधर्मियों ने खोल दिया 'धर्म' का भ्रम !
'ईमान' की कहाँ थी हमें जो खबर है आज !!

कुछ शर्म खायें जी में अहिंसा के फ़लसफ़ी !
रुख़ उनके क़ाफ़िले का किधर था, किधर है आज !!

बीहड़ वनों में डाल दिया है पड़ाव,—और
कहते हैं आप, ख़त्म हमारा सफ़र है आज !!

हैवां ही सही

[दंगों में हिन्द-पाकिस्तान के शहर और कस्बे]

हैवां ही सही, इन्सां न सही !
भाई न सही, दुश्मन ही सही !
बोली तो समझ लोगे अपनी ?
यह शहर नहीं, अब वन ही सही !

हां 'हिन्दू धर्म' इसी में है !
'शाने-इस्लाम' इसी से है !
—नेता माउंटबैटन ही रहे !
काबा-काशी लन्दन ही सही !

टूटी हुई मस्जिद कहती थी
जल कर टूटे हुए मन्दिर से :
'तुम काल हुए तो संस्कृति के !
मजहब के हम मदफ़न ही सही !'

जय हिन्द ! निहत्थों पर हमला !
बुज़दिल की छुरी—अल्लाह् अकबर !
यों शस्त्र-ओ-शिखंडी के पर्दे में
साम्राज्य पुरफ़न ही सही !

जलते-जलते हम, काश !
जलाने वाले को भी जला सकते !
जो आग लगी है इस घर में
उस आग के हम ईंधन ही सही !

इतिहास में अपने पहले कभी !
क्या कर्ण-ओ-हुसैन भी थे 'शमशेर' ?!
इन्सान ही थे शायद वो भी
इन्सान के हम दुश्मन ही सही !

'धर्म' और 'मजहब' वाले

१

यह किसने दांत निकाले हैं !
यह किसने आँखें ऊपर कीं !
यह किसने लट्ठ सँभाले हैं !
यह किसकी खोपड़ियाँ तड़कीं ?!

—देखो, ये हिन्दू, वो मुस्लिम !
ये "धर्म" औ" "मजहब" वाले हैं !

२

"जय हिन्द !" ये पीछे से हमला !
"अल्लाह अकबर !" बुजदिल चाक़ू !
यह "धर्म" था हत्यारा पहला !
या "मजहब" था क़ातिल डाकू ?!

—जो भी हो, हिन्दू या मुस्लिम :
ये "धर्म" औ "मज़हब" वाले हैं !

रुबाई

हैं आसमाने-हिन्द के तारे दोनों !
हैं सरज़मीने-पाक के प्यारे दोनों !
यह किसकी नज़र खाये जाती है उन्हें !
आपस ही में लड़-लड़ के हारे दोनों !

खण्ड दो

श्रद्धास्पद
डॉ० पूरनचन्द्र जोशी को
जिन्होंने
भारत के प्रगतिशील लेखकों व कलाकारों को
उत्कृष्ट सर्जना की प्रेरणा देने में
ऐतिहासिक रोल अदा किया है
और जिनके प्रति
यह अकिंचन लेखक कम ऋणी नहीं

बात बोलेगी

भारत की आरती

भारत की आरती
देश-देश की स्वतन्त्रता देवी
आज अमित प्रेम से उतारती।

निकटपूर्व, पूर्व, पूर्व-दक्षिण में
जन-गण-मन इस अपूर्व शुभ क्षण में
गाते हैं घर में हों या रण में
भारत की लोकतन्त्र भारती।

गर्व आज करता है एशिया
अरब, चीन, मिस्र, हिन्द-एशिया
उत्तर की लोक संघ शक्तियाँ
युग-युग की आशाएँ वारतीं।

साम्राज्य पूँजी का क्षत होवे
ऊँच-नीच का विधान नत होवे
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती।

जन का विश्वास ही हिमालय है
भारत का जन-मन ही गंगा है
हिन्द महासागर लोकाशय है
यही शक्ति सत्य को उभारती।

यह किसान कमकर की भूमि है
पावन बलिदानों की भूमि है
भव के अरमानों की भूमि है
मानव इतिहास को सँवारती।

बात बोलेगी

बात बोलेगी,
हम नहीं।
भेद खोलेगी
बात ही।

सत्य का मुख
झूठ की आँखें
क्या—देखें !

सत्य का रुख
समय का रुख है :
अभय जनता को
सत्य ही सुख है,
सत्य ही सुख।

दैन्य दानव; काल
भीषण; क्रूर
स्थिति; कंगाल
बुद्धि; घर मजूर।

सत्य का
क्या रंग है ?—
पूछो
एक संग।

एक—जनता का
        दुःख : एक।
हवा में उड़ती पताकाएँ
        अनेक ।

दैन्य दानव । क्रूर स्थिति।
कंगाल बुद्धि : मजूर घर भर।
एक जनता का—अमर वर :
एकता का स्वर।
—अन्यथा स्वतंत्रय-इति।

[१६४५

बहुत सीधे-से प्रश्न

इक चीख है, इक शोर।
    इक नशे का है दौर।
हाँ, जोश है सब ओर।
    इन्सान था कुछ और
        अब इन्सान है कुछ और!

यह चीख है दिल की...
    या गला रेडियो का है ?
मशीन है मिल की
    कि नारा ये
        सच्ची पार्टियों का है ?

एडीटरी जनता ने
    सिखायी है कि तन्खाह ने ?
लेता है मेहनताने
    ये मुख्तार, कि है
        क़ौम के वह दाहिने ?

नेता है कि अखबार का
    वह पहला सफ़ा है ?
वह भाव है बाजार का
    या सिक्का मोहब्बत का
        जो हर दिल पे जमा है ?

झंडे की तरह अपने
उड़ता है हवा में,
या त्याग ने, तप ने
दिल उसका उठाया
तो उठा हमको उठाने ?

गुस्सा तो बहुत है !
गर्मी तो बहुत है !
कुछ शर्म भी आती है
यह कहते कि—सत् है
कुल अपने ही बाँटे में
बस अपनी ही थाती है !!

निज़ामशाही : सन् १९४८

ये चालबाज हुकूमत, दुरंगियों का गढ़,

बनी हुई है अभी तक फ़िरंगियों का गढ़ !

—वो बन न जाय कहीं ख़ानाजंगियों का गढ़ ! !

स्वतंत्र होना है जनतंत्र के सिपाही को !

कि अपने ख़ून से धोना है इस सियाही को !

—लगे अवाम की ठोकर निज़ामशाही को !

वाम वाम वाम दिशा

वाम वाम वाम दिशा,
समय साम्यवादी ।
पृष्ठभूमि का विरोध अंधकार-लीन । व्यक्ति...
कुहाऽस्पष्ट हृदय-भार, आज हीन ।
हीनभाव, हीनभाव
मध्यवर्ग का समाज, दीन ।

किन्तु उधर
पथ-प्रदर्शिका मशाल
कमकर की मुट्ठी में—किन्तु उधर :
आगे-आगे जलती चलती है
लाल-लाल
वज्र-कठिन कमकर की मुट्ठी में
पथ-प्रदर्शिका मशाल ।

भारत का
भूत-वर्तमान औ' भविष्य का वितान लिये
काल-मान-विज्ञ मार्क्स-मान में तुला हुआ
वाम वाम वाम दिशा,
समय : साम्यवादी ।

अंग-अंग एकनिष्ठ
ध्येय-धीर
सेनानी

वीर युवक
अति बलिष्ठ
वामपंथगामी वह...
समय : साम्यवादी ।

लोकतन्त्र-पूत वह
दृत, मौन, कर्मनिष्ठ
जनता का :
एकता-समन्वय वह...
मुक्ति का धनंजय वह
चिरविजयी वय में वह
ध्येय-धीर
सेनानी
अविराम
वाम-पक्षवादी है...
समय : साम्यवादी ।

का० रुद्रदत्त भारद्वाज की शहादत की पहली वर्षी पर

[१६ अप्रैल, १६४६]

वह हँसी का फूल—
        ऊषा का हृदय
बस गया है याद में : मानो
अहर्निश्
साँस में एक सूर्योदय हो !

        जागता व्यक्तित्व !
        बोलता पाण्डित्य !

आज भारद्वाज के विश्वास की लाली
रक्त का स्पंदन—मधुरतर है ।
                        प्रखरतर है ।

×   ×

चढ़ रहा है दिन ।

×   ×

धूल में हैं तीन रंग
गड़ा जिसपर मौन भारद्वाज का है—लाल निशान :

उसी की आभा गगन
पूर्व में लाता ।

देखता है मौन अक्षयवट
क्रान्ति का इक वृहद् कुंभ :
क्रान्तिमय निर्माण का इक वृहद् पर्व ।
चमकती असिधार-सी है धार गंगा की :
हरहराकर उठ रहा
नव
जनमहासागर ।

[१६४६

शहीद का० नागेन्द्र सकलानी के प्रति

[जो ११ जनवरी, १६४८ को टिहरी सामन्तशाही की गोलियों से शहीद हुए]

जनता की आस्थाओं में पवित्र
ओ शहीद !
वीर, टिहरी के विजेता
अमर सेनानी !

लोक-सत्ता-भवानी के चरण कमलों पर
भेंट चढ़ने को प्रथम
ओ क्रान्ति-पुष्प !

'सुमन'-से* अद्वितीय,
वीर सकलानी !
आज भी उर को हमारी दीर्घ यादों में
बसे हो !

क्रान्तियुग की प्रेरणाओं के सहारे,
ओ नौजवान !
कर्म की कविता स्वयं ! मार्मिक, उष्ण,
स्पष्ट
अपनी-सी वहुत
कि पहली कली जैसे उषा की !

---

*टिहरी प्रजा-मंडल के एक अन्य प्रसिद्ध शहीद श्री देव सुमन। ये सामन्ती जेल में ८४ दिनों तक हड़ताल कर के शहीद हुए।

तू दिवंगत कहाँ
जबकि दृष्टि नव
देखती है तुझे अपने सत्य में साकार !

चित्र तेरा ही लिये
अनुभूतियों के फ्रेम मानो
अर्थ तेरा ही सँजोये हुए !

वह कहानी
जो अजब इतिहास है संघर्ष का अपने,
ओ नौजवान,
तू वही कुछ है !

एक सपना था सजीव
मार्क्सवादी देश का तू ! एक तारा था
भविष्यत् लोक-युग का !

हाँ, सेल की कुछ मीटिंगों में वह
रूठना, नाराज़ होना, भुनभुनाना
याद है तेरा !
और तेरी एक चिन्ता, एक निष्ठा,
एक पथ-रेखा
...साम्यवादी कर्म की !

ओ नौजवान,
गढ़ गया है तू नया गढ़वाल
हृदयों में हमारे !
और वह साकार होगा
सजग
कर्म स्पन्दन में अवश्य
वीर सकलानी !

[१६४६

राजनीतिक करवटें, १६४८

[बतर्ज कव्वाली]

हाय लीडर दुरंगी न कम गुम हुए ! !
बीच धारा अगम थी —गुड़म् गुम हुए ! !

"इन्क़लाबी" हमारे न कम गुम हुए :
लेके साइकिल हमारी निगम गुम हुए

हमने देखा था उनको इसी मोड़ पर !
एकदम आये वो ! एकदम गुम हुए ! !

ऐसे खोये गये जाके आफ़िस में हम :
अपने कानों पे रक्खे क़लम गुम हुए ! !

बोली बरसात में इन्क़लाबी दुल्हन :
'ले के छाता हमारा बलम गुम हुए !'

रक्खो एक्सौ-चवालिस दफ़ा फूंक-फूंक !
वर्ना रक्खा जो अगला क़दम, गुम हुए ! !

जैसे होश आज[1] बंगाल सरकार के;
हम तो ऐसे, तुम्हारी क़सम, गुम हुए !

ऐसी आंधी चले···हम भी पूछें—कहाँ,
थे जो ढाते थे जुल्मो-सितम, गुम हुए ??

१. सन् १६४८-४६ के जमाने में।

आ रहे हैं मसीह्-ओ-खिजर भींकते :
हाय ! अब इन्क़लाबों में हम गुम हुए ! !

क्या गुरुजी मनुऽजी को ले आयेंगे ?—
हो गये जिनको लाखों जनम गुम हुए !

अपनी क़िस्मत को यों रो रहे है चियांग[२]—
रह गये हम लँडूरे, सनम गुम हुए !

किस एटम्‌गर से पूछे कि—इन्सान के
हीरोशिमा में कितने अटम गुम हुए ! ?

हमने ज़ेरे-जमीं[३], की तरक़्की पसन्द :
ले के शमशेर अपनी क़लम गुम हुए !

---

२. चियांग-काई-शेक, जिन्हे १९४९ में फ़ारमूसा (ताइवान) मे शरण लेनी पड़ी।
३. अर्थात् 'अंडर ग्राउंड'।

रक्षा

दो इंच का
गहरा-नीला-बैंगनी, मखमली
आसमान का टुकड़ा
खुले सफ़े के ऊपर झलका
दरवाजे के पार,
दूर।

कमरे की दीवारें
हलकी सीप-गुलाबी चूने की खामोशी लिये
खड़ी हैं अपनी पीठ किये उस ओर।
शाम हो चुकी है पूरब में,
जुलाई की शाम,
गीली रातों की अगुआई करने वाली।
खुली हुई पुस्तक है—"अरागाँ :
पोएट आव् रिसर्जेन्ट फ्रांस"।
(जर्मन जानवरों के जबड़े से बचने को
कैसे गोरिल्लाओं की इन्सान हड्डियों ने
कवियों को दिया, खास कर अरागाँ को
नया कवच। फिर...)

उस मखमल के पाँवड़े पर चल कर आया
मेरे कमरे तक जो भाव
मेरी गीली सीली चौखट पार कर

वह यह है कि
इतनी ऊँची कीमती तहज़ीब की
जितना यह भारत का आसमान है
रक्षा कौन कर रहा है ?

दुनिया में अम्न के लिए

अम्न का राग

सच्चाइयाँ
जो गंगा के गोमुख से मोती की तरह बिखरती रहती हैं
हिमालय की बर्फ़ीली चोटी पर चाँदी के उन्मुक्त नाचते
परों में झिलमिलाती रहती हैं
जो एक हज़ार रंगों के मोतियों का खिलखिलाता समंदर
है
उमंगों से भरी फूलों की जवान कश्तियाँ
कि वसंत के नये प्रभात सागर में छोड़ दी गई हैं।

ये पूरब पश्चिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं
मैंने एशिया की सतरंगी किरनों को अपनी दिशाओं के
गिर्द
लपेट लिया
और मैं यूरोप और अमरीका की नर्म आँच की धूप-छाँव
पर
बहुत हौले-हौले नाच रहा हूँ
सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं
क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शांति का राग हूँ
बहुत आदिम, बहुत अभिनव।

हम एक साथ उषा के मधुर अधर बन उठे
सुलग उठे हैं
सब एक साथ ढाई अरब धड़कनों में बज उठे हैं
[illegible] की तरह
[illegible]

संसार के पंच परमेश्वर का मुकुट पहन
अमरता के सिंहासन पर आज हमारा अखिल लोक-
प्रेसिडेंट
बन उठी है।

देखो न हक़ीक़त हमारे समय की कि जिसमें
होमर एक हिन्दी कवि सरदार जाफ़री को
इशारे से अपने क़रीब बुला रहा है
कि जिसमें
फ़ैयाज़ खाँ बिटाफ़ेन के कान में कुछ कह रहा है
मैंने समझा कि संगीत की कोई अमर लता हिल उठी
मैं शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में
झलकता हुआ देख रहा हूँ
और कालिदास को वैमर के कुंजों में विहार करते
और आज तो मेरा टैगोर मेरा हाफ़िज़ मेरा तुलसी मेरा
ग़ालिब
एक-एक मेरे दिल के जगमग पावर हाउस का
कुशल आपरेटर है।

आज सब तुम्हारे ही लिए शांति का युग चाहते हैं
मेरी कुट्टूवुट्टू
तुम्हारे ही लिए मेरे प्रतिभाशाली भाई तेजबहादुर
मेरे गुलाब की कलियों से हँसते-खेलते बच्चों
तुम्हारे ही लिए, तुम्हारे ही लिए

मेरे दोस्तो, जिनसे जिन्दगी में मानी पैदा होते हैं
और उस निश्छल प्रेम के लिए
जो माँ की मूर्ति है
और उस अमर परमशक्ति के लिए जो पिता का रूप है।

हर घर में सुख
शांति का युग
हर छोटा-बड़ा हर नया-पुराना हर आज-कल-परसों के
आगे और पीछे का युग
शांति की स्निग्ध कला में डूबा हुआ
क्योंकि इसी कला का नाम जीवन की भरी-पूरी गति है।

मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टैचू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
और मेरे दिल में पेकिंग का स्वर्गीय महल
मक्का मदीना से कम पवित्र नहीं
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ
जो वोल्गा से आए
मेरी देहली में प्रह्लाद की तपस्याएँ दोनों दुनियाओं की
चौखट पर
युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं।

यह कौन मेरी धरती की शांति की आत्मा पर कुरबान हो
गया है

अभी सत्य की खोज तो बाक़ी ही थी
यह एक विशाल अनुभव की चीनी दीवार
उठती ही बढ़ती आ रही है
उसकी ईंटें धड़कते हुए सुर्ख़ दिल हैं
यह सच्चाइयाँ बहुत गहरी नीवों में जाग रही हैं
वह इतिहास की अनुभूतियाँ हैं
मैंने सोवियत यूसुफ़ के सीने पर कान रखकर सुना है।

आज मैंने गोर्की को होरी के आँगन में देखा
और ताज के साये में राजर्षि कुंग को पाया
लिंकन के हाथ में हाथ दिये हुए
और ताल्स्ताय मेरे देहाती यूपियन होंठों से बोल उठा
और अरागों की आँखों में नया इतिहास
मेरे दिल की कहानी की सुर्ख़ी बन गया
मैं जोश की वह मस्ती हूँ जो नेरुदा की भवों से
जाम की तरह टकराती है
वह मेरा नेरुदा जो दुनिया के शांति पोस्ट आफ़िस का
प्यारा और सच्चा क़ासिद
वह मेरा जोश कि दुनिया का मस्त आशिक
मैं पंत के कुमार छायावादी सावन-भादों की चोट हूँ
हिलोर लेते वर्ष पर
मै निराला के राम का एक आँसू
जो तीसरे महायुद्ध के कठिन लोह पर्दो को
एटमी सुई-सा पार कर गया पाताल तक
और वहीं उसको रोक दिया

मैं सिर्फ़ एक महान विजय का इंदीवर जनता की आंख में
जो शांति की पवित्रतम आत्मा है।

पच्छिम में काले और सफ़ेद फूल हैं और पूरब में पीले
और लाल
उत्तर में नीले कई रंग के और हमारे यहां चम्पई-सांवले
और दुनिया में हरियाली कहां नहीं
जहां भी आसमान बादलों से जरा भी पोंछे जाते हों
और आज गुलदस्तों में रंग-रंग के फूल सजे हुए है
और आसमान इन खुशियों का आईना है।

आज न्यूयार्क के स्काईस्क्रेपरों पर
शांति के 'डवों' और उसके राजहंसों ने
एक मीठे उजले सुख का हलका सा अँधेरा
और शोर पैदा कर दिया है।
और अब वो आर्जेन्टीना की सिम्त अतलांतिक को पार
कर
रहे हैं
पाल राब्सन ने नई दिल्ली से नये अमरीका की
एक विशाल सिम्फ़नी ब्राडकास्ट की है
और उदयशंकर ने दक्षिणी अफ़्रीका में नयी अजंता को
स्टेज पर उतारा है
यह महान नृत्य वह महान स्वर कला और संगीत
मेरा है यानी हर अदना से अदना इंसान का

बिल्कुल अपना निजी ।
युद्ध के नक्शों को क़ैंची से काटकर कोरियायी बच्चों ने
झिलमिली फूलपत्तों की रोशन फ़ानूसें बना ली हैं
और हथियारों का स्टील और लोहा हजारों
देशों को एक-दूसरे से मिलानेवाली रेलों के जाल में बिछ
गया है
और ये बच्चे उन पर दौड़ती हुई रेलों के डिब्बों की
खिड़कियों से
हमारी ओर झांक रहे हैं
यह फ़ौलाद और लोहा खिलौनों मिठाइयों और किताबों
से लदे स्टीमरों के रूप में
नदियों की सार्थक सजावट बन गया है
या विशाल ट्रैक्टर-कम्बाइन और फैक्टरी-मशीनों के
हृदय में
नवीन छंद और लय का प्रयोग कर रहा है।

यह सुख का भविष्य शांति की आंखों में ही वर्तमान है
इन आंखों से हम सब अपनी उम्मीदों की आँखें सेंक
रहे हैं
ये आँखें हमारे दिल में रोशन और हमारी पूजा का
फूल है
ये आँखें हमारे कानून का सही चमकता हुआ मतलब
और हमारे अधिकारों की ज्योति से भरी शक्ति हैं
ये आँखें हमारे माता-पिता की आत्मा और हमारे बच्चों
का दिल हैं

ये आँखें हमारे इतिहास की वाणी
और हमारी कला का सच्चा सपना हैं
ये आँखें हमारा अपना नूर और पवित्रता हैं
ये आँखें ही अमर सपनों की हक़ीक़त और
हक़ीक़त का अमर सपना हैं
इनको देख पाना ही अपने आपको देख पाना है, समझ
पाना है ।

हम मनाते हैं कि हमारे नेता इनको देख रहे हों ।

[१९५२

शान्ति के ही लिए

कोई भी हो तुम
मर्द या औरत
बूढ़े या बच्चे
मज़दूर, किसान,
सिपाही, विद्यार्थी,
कि व्यापारी;
कोई भी फ़र्क़ इससे नहीं पड़ता
कि तुम्हारे राजनीतिक विश्वास क्या हैं
या तुम किस धर्म को अपनाये हुए हो
अगर तुमसे पूछा जाय कि
सबसे बुनियादी वह पहली चीज़ कौन-सी है
कि मानव-मात्र के लिए जिसका होना आवश्यक है ?
तो एक ही जवाब होगा तुम्हारा :
एकदम पहली ही बार,
फिर दूसरी बार भी,
और अन्तिम बार भी
यही एक जवाब—
शान्ति !
यानी कि अगर तुम बँधे हुए नहीं
किसी प्रतिक्रियावादी गुट से; या नहीं तुम
सिड़ी सौदाई पागल।
हाँ—

फिर वह तुम हो
चाहे मैं

चाहे कोई और
सभी : सभी सीधे और समझदार लोग
निश्चित रूप से शान्ति चाहते हैं।
सभी को शान्ति प्यारी है : उतनी ही प्यारी
जितनी कि सबको अपनी आंख प्यारी होती है।[1]

---

१. 'चीनी-हिन्दी भाई-भाई' के युग में विश्व शान्ति आन्दोलन की एक कान्फ्रेंस में पठित सी शिएन मिन की एक लम्बी कविता के आरम्भिक अंश का अनुवाद।

और प्रलय कैसे होती है ?

और प्रलय कैसे होती है !
बीज मनुज का अणु-उत्तापित
खिल जाता है खुल जाता है
एक-एक मानव का
                सहसा।

बीज मनुज के कर्म मर्म का
इतिहासों में क्षण-क्षण तापित
(एक-एक मानव का)
                —सहसा
खुल जाता है खिल जाता है।

—और प्रलय कैसे होती है !

जब हो जाते
हृदय और मस्तिष्क मनुज के
एक-एक मानव के
                सहसा
हीरोशीमा, नागासाकी—

जब आत्मा समस्त पृथ्वी की
पलक मारते विकिनि अटोल[1]
बन उठती, तब......

—और प्रलय कैसे होती है !

---

१. दूसरे महायुद्ध के बाद अमरीका के प्रथम अणु-विस्फोट परीक्षण के लिए चुना गया प्रशान्त महासागर का एक प्रवालद्वीप।

चीन देश का नाम

[हाशिये पर दिये हुए चीनी संकेताक्षरों का अर्थ चीन देश का नाम है : 'चीनी जनता का लोकसत्तात्मक गणतन्त्र राज्य।' देशों के बीच मैत्रीभाव का आशय सम्मुख था। उससे प्रेरित होकर इन अलग-अलग संकेताक्षरों के मूल अर्थों की भाव-भूमि पर यह स्वतन्त्र रूपक पल्लवित किया गया है।]

मैंने
क्षितिज के बीचोबीच
खिला हुआ देखा
कितना बड़ा फूल !

中

देख कर
गंभीर शब्द की दृढ़
तलवार खींची अपने सीने पर
रखी और प्रण लिया
कि :

華

वह आकाश की ओट का फूल
जब तक मैं चुन न लूँगा
चैन से न बैठूँगा।

人

और महान संकल्प लिए
दौड़ता हुआ संदेशवाहक हो गया—
मैं दौड़ा :

民

चार दिशाओं का आशीष
सिर पर बाँधे

पाँवों में उत्साह के पर औ'
अक्षुण्ण गति के तीर
बाँधे।

共

और पहुँच कर वहीं
अपने प्रेम की
बाँहों में बाँहें डाल दीं मैंने
और उस सीमा के ऊपर खड़े हुए
हम दोनों प्रसन्न थे।

和

अमर सौन्दर्य का
कोई इशारा सा
एक तीर—
दिशाओं की चौकोर दुनिया के बराबर
सन्तुलित
सधा हुआ—
निशाने पर
छूटने-छूटने को था।

× ×

國

(हमारा अन्तर
एक बहुत बड़ी विजय का
आलोक-चिह्न
है।)

सम्प्रति कविता, कवि और इतिहास

पाँवों में उत्साह के पर औ'
अक्षुण्ण गति के तोर
बाँधे।

共 और पहुँच कर वहीं
अपने प्रेम की
बाँहों में बाँहें डाल दीं मैंने
और उस सीमा के ऊपर खड़े हुए
हम दोनों प्रसन्न थे।

和 अमर सौन्दर्य का
कोई इशारा सा
एक तीर—
दिशाओं की चौकोर दुनिया के बराबर
सन्तुलित
सधा हुआ—
निशाने पर
छूटने-छूटने को था।

× ×

國 (हमारा अन्तर
एक बहुत बड़ी विजय का
आलोक-चिह्न
है।)

सम्प्रति कविता, कवि और इतिहास

खिलाओ हज़ारों, तो
लाखों कमाओ !

और क्या, हाँ, फिर
सट्टे—फ़स्ट क्लास होटेल—
ठेके—या कि एलेक्शन में
पूँजी लगाओ,
और दो...'बड़े-बड़ों' के बीच में बैठकर...
शान से मूछों पर ताव !
हाँ, कानी उंगली पे अपनी गांधी-टोपी
नचाये, नचाये, नचाये जाओ !

३

और आर्ट—
क्या है ? औरत
की जवानी के
सौ बहाने : उसके
सौ
'फ़ार्म' :
जो उसपे झूमे, अदा करो
वही पार्ट :
—इसका भी एक बाज़ार है
समझे न ?

और देश को ले जाओ
(पता नहीं कहाँ !)

समझे, मेरे
अत्याधुनिक भाई ?!

सत्ताईस मई, सन् '६४ : तीसरा पहर

दो ही घंटे हुए हैं
और सारा आसमान सारी ज़मीन
एकदम कैसी बदल-सी गयी है

जिस हवा में साँस लेते थे अभी, वह...वह
एकदम
कैसी ख़ाली-सी हो गयी है !
यह घड़ी आनी तो थी ही   यही सूनापन

...घेर लेगा हमें एकाएक   आकर
यही भय कुछ
हम छिपाये हुए थे   कठिनता-से
और एकाएक ही कैसी
वह घड़ी आ गयी !

× × ×

आयु का धारा निरन्तर बह रहा है
अगम सागर में किसी विश्वास के
वह समाहित हो रहा है...
देख पायें हम उसे चाहे   न देख पायें !

अटल नियमों के अपार लहर मंडल
हम निरन्तर बन रहे हैं
और उन्हीं में ढल रहे हैं
देख पायेंगे उन्हें हम...या

समझ पायेंगे उन्हें...या
पकड़ पायेंगे उन्हें हम कभी...यह
संभव नहीं !
वह अटल नियम हम स्वयं ही हैं !

एक उठती हुई लहर
खो गयी है जहाँ
और उठती गयी है
होकर अदृश्य
और उठती जा रही है और उठती जा रही है
अखिल मानव हृदय को लेकर
वह
अकाल-वत्

२

बुझ गया है क्या कुछ नहीं
वह हमारी साँस में है वह
साँस

आयु, देश की है।
काल, देश का है।
हम कि इन पर विजय का दर्शन
स्वयं को मानते हैं
मानते हैं—कि :

खो गया कुछ भी नहीं—क्या खो गया
कुछ भी नहीं !

हमीं में तो वह
समा गया है
जो कुछ था

हम खो गए हैं ?
नहीं ।
तुम खो गये हो ?
नहीं ।
हम कि दुश्मन, दोस्त या दोनों नहीं हैं एक साथ
एक ही हैं

[जो कुछ था वह अंश सदा को
हमारा हो गया है]

हम, विरोध—स्वयं का ही हैं
आस्था-विश्वास सच्चा है अगर।

[इलाहाबाद, १९६४]

गजानन मुक्तिबोध

ज़माने भर का कोई इस क़दर अपना न हो जाये
कि अपनी ज़िन्दगी ख़ुद आपको बेगाना हो जाये।

सहर होगी ये शब बीतेगी और ऐसी सहर होगी
कि बेहोशी हमारे होश का पैमाना हो जाये।

किरन फूटी है ज़ख़्मों के लहू से : यह नया दिन है :
दिलों की रोशनी के फूल हैं—नज़राना हो जाये।

ग़रीबुद्दहर थे हम; उठ गये दुनिया से; अच्छा है...
हमारे नाम से रौशन अगर वीराना हो जाये।

बहुत खींचे तेरे मस्तों ने फ़ाक़े फिर भी कम खींचे
रियाज़त ख़त्म होती है अगर अफ़साना हो जाये।

चमन खिलता था वह खिलता था,और वह खिलना कैसा था
कि जैसे हर कली से दर्द का याराना हो जाये।

वह गहरे आसमानी रंग की चादर में लिपटा है
कफ़न सौ ज़ख़्म फूलों में वही पर्दा न हो जाये।

इधर मैं हूँ उधर मैं हूँ, अजल, तू बीच में क्या है ?
फ़क़त इक नाम है, यह नाम भी धोका न हो जाये।

× × ×

वो सरमस्तों की महफ़िल में गजानन मुक्तिबोध आया
सियासत ज़ाहिदों की ख़न्दए-दीवाना हो जाये।

प्रेम की पाती
[घर के बसन्ता के नाम]

१

कौन के पीतम, कौन की पाती !
आस लगाये, दीया न बाती !

ओ मेरे साईं, ओ मेरे ईश्वर
तेरा ही नाम अब प्रानों की थाती !

होली का भय, दीवाली का आतंक
ईद मुहर्रम, एक ही भाँतिऽ !

पर्व के दिन और ऐसे भयानक
छलनी-छलनी रे देस की छाती !

प्रेम के संगी, धर्म के साथी
रूँध गये सब संग-सँगाती !

काले बजार में धर्म की दुल्हन
कैसे ये दूल्हा ! कैसे बराती !

हिन्दू कि मुस्लिम सिख कि इसाई
भारतबासी कौन एक् जातिऽ !

२

कौन पठायी किन्ने रे बाँची
प्रेम की पाती साँची रे साँची !

मैं तो न जानूं उर्दू कि हिन्दी
प्रेम की बानी सांची रे सांची !

प्रान हमारे मान तुम्हारा
एक धरन थे, टाँक न टाँची !

आज गिरो कुल साख हमारी
देस में परखी लोक में जांची !

आज सुहाग के फूल बखेरे
माई रे मेरी आग में तांची !

फूल का काँटा फूल को छेदे
डंक-लगी सी भामरी नाची !

तीरथराज़ की आब गयी कल
आज इन्दौर है मेरठ, राँची !

धन गुजरात में गाँधी तरपन
धन्न रे धर्म की मूरत काँची !

वैष्णव-जन तो ऐनेई कहिये
सावर-सन्त शती यह साँची !

कैसा जग्य कि होम हुए हैं
मात-शिशु समिधा भर खाँची !

भारत-भाग्य-विधाता रे जन-मन
जन के रे मन पर चंडी नाचो !

आज मनाओ घर के वसन्ता
प्रेम का पर्व है सांचो रे सांचो !

हमारा नया सम्मिलित अहं

[स्वर्गीय सज्जाद ज़हीर]

ऊँची फ़जाओं में दूर-दूर तक सफ़र करने वाले
साथी
यह क्या परतों साथ लाये हैं
गुलाबों-सजा
ख़ामोश बिजलियों का-सा
जाने कैसा
इक मातमी गुलदस्ता
क्या यही कुछ यही सब था वह
शान्ति का
क्रान्ति का राजहंस !

और
वो उधर कौन देर से
आँखें मूंदे
अपना सर
फूलों के ऊँचे
ताबूत से टिकाये
किसी को
एक अबद से मानो
सूंघ रहा है
पलकें
बन्द किये किसी से
दिल ही दिल में

हमकलाम है
एक अबद से मानो

ये लोग क्या कह रहे हैं···
वह यहीं तो था अभी-अभी   वह
यकायक किधर पंख मार कर उड़ गया   ?!
यह तो बड़ी अजीब बात है कि   वह
पूरब और पच्छिम की दिशाओं को
एक ही पल में   एक-साथ···
एक ही पथ की ओर
मोड़ता जा रहा है !   यह तो
बड़ी अजीब बात है   यह
अगर यों है,
कैसी अजीब है   यह परवाज !

रह-रह कर इस खामोश फ़ज़ा में परों की एक
नर्म झिलमिलाहट   और एक खुशआयंद
आहट-सी आती महसूस होती है

मगर सुनो तो,
ऐन इसी वक़्त हो सकता है
वह हाफ़िज़ के मज़ार को बोसा
दे रहा हो...

क्या खबर वह लमहों में हो
प्रेमचन्द के मुजस्सिमे के सामने
चुपचाप खड़ा हुआ या बहुत ही आहिस्ता-
आहिस्ता टहलता…
या कौन जाने वह
शान्तिनिकेतन में ही न
रम गया हो कहीं
अपने ही आप में

खोया-खोया
अरे भई तुमने उसे
पुरानी दिल्ली के पास शान्तिवन में भी तो
ज़रा देखा होता
क्या यह नहीं
हो सकता कि वहीं
कोई हमदमे-देरीना अचानक उसे, वहीं
कहीं मिल गया हो
आज… आज ही
जब कि हम यहाँ इकट्ठा हो खामोश खड़े
उसकी राह-सी देख रहे हैं…

तीन दिन से मैं जिस ओर भी
देखता हूँ वही उजली सरसराहट-सी

रह-रह कर इक-आन को
बस एक-आन को झलक मार जाती है

बादलों में धीमे-धीमे मिटते हुए
नीले-नीले-से छोटे-छोटे गोल हल्क़े
जाने क्या लिखते-से चले जा रहे हैं
चले जा रहे हैं...लिखते-से दूर तक
जाने क्या ये गोल-गोल छल्ले
धुँधले होते फैलते हुए
चले
जा
रहे हैं
जैसे
अलग-अलग भाषाओं के एशियाई-
अफ्रीकी शायरों के
दूर और पास
बिखरे हुए हल्क़े...
जैसे इन्क़लाबियों की
देस-देस की
नई-पुरानी
गाथाएँ
गलबहियाँ-सी डाले
बढ़ती चली जायँ...

अचानक एक हलकी-सी बहुत
नर्म आवाज कानों में पड़ी
'भई कभी मिलो ! ...कभी-कभी
मिल लिया करो ! ...मिलो ! ...कुछ
सुनाओ ! ...या कि, तुम हमें इस क़ाबिल
नहीं समझते ?' और वो
अपनी अथाह शफ़क़त से मुझे
शर्मिन्दा करते हुए फिर उन्हीं
नीले हलकों की ओट ओझल
हो गये...
और मेरे सामने कैसी वसीअ खला
छोड़ गये ...
जिसमें मैं खड़ा
एक-टक् उसी सिम्त
देखता जा रहा हूँ...

क्या वह कला की कोई नयी
व्यापक विश्वकला की कोई बिलकुल
नयी फ़जा है...?
क्योंकि उसका अर्थ देखो न
कितनी दूर तक जाता
महसूस हो रहा है !

और अब हम सब उस अर्थ से

लिपटे हुए थे। हम सब
उसमें खो गये थे। और
वहाँ एक मिला-जुला व्यापक
बिलकुल नया व्यापक   बिलकुल
नया सम्मिलित अहं
जाग रहा था
हम सबकी एक असम्भव-सी इकाई
की तरह !

[१९७४]

सम्प्रति कविता, कवि और इतिहास

'आदमी वर्गीकृत हुआ तो
कविता विकृत होती है' (?)

—पषाणा ('नया प्रतीक')

१

गुरु-स्वर

कविता तो
किरणों की धार में वेगमयी सविता है
जहाँ से कि
राग, उत्तप्त हो···
अंततः निस्तब्ध होते हैं !
रह-रह जहाँ से कि दिव्यरंग
रक्त ऊर्जा
उभरती !

आधुनिक कवि स्वर : एक

—धूसर वास्तविकता की हमारी
यह ऊहापोह कविता तब
वर्गों में नहीं, अपवर्गों में नहीं,—क्या
स्वर्गों में   मुक्त होती है ?

गुरु-स्वर

—सुनो वत्स,
अन्तर की अर्चाएँ
लोहित विज्ञापन से परे है।

२

आधुनिक कवि स्वर : दो

मध्यवर्ग औ' मजूर अपना दुख
आखिर तब किससे कहें !
कविता तो है आज
गमलों में नर्गिसी वन-विलास। नेता
ताने देता, हवाई।...दोनों वर्ग हेरते
गहरे महामहिम काले में अवश
सफ़ेद कण आशा के। और निःश्वास...
आक्रोश...बंध...घेराव...क्रांति आरंभ—
एक-साथ इन सबकी धार वाली
कविता सुत कर
बरबस ही आज कढ़ आती है
तपते जनमानस के म्यान से
जलते हुए स्वर पर।

कलासीकी शंका-स्वर

—सचमुच ?
नहीं यह र्‌हैटरिक निरा
व अति सामान्यीकरण वथा ?
तब
कभी-कभी सूक्ष्म राग-रागिनी-झरोखों से
विरल दीप्त स्वर की अटारियाँ ये

किनके गीत आलोकित करती-सी
लगतीं ?

आधुनिक स्वर · एक

—मेरे जान
व्यापक समाज आग झेलता है
और एक पूरा युग उसका ताप।
एक बार
कवि-प्राण उत्तप्त हो आज
पुनः निः
स्तब्ध
नहीं ही हो पाते।

२

आधुनिक दार्शनिक इतिहासकार (गुरुस्वर)·

—यही दृश्य स्पष्ट रक्तवर्णों में
खुँदा हुआ दिखता चला जाता है
वर्ण-वर्ण
कविता की सृष्टिभूमि परिभाषित
होती चली जाती है। नवोत्तर
क्रम में निरंतर उभरती युवापीढ़ी का
इतिहास—
चढ़ा हुआ दरिया विसर्जन के रंगों सा—
ताजा चमकता हुआ बहता चला जाता है।:

"आकाशे दामामा बाजे..."*

गर्दन झुकाये
एकटक कुछ देखते, सोचते,
निश्चल
ओ विद्रोही
—क्या देखते, जाने क्या सोचते
स्वतः अनजाने ही
तीन देशों के एक साथ नागरिक
तीन देशों की विप्लवी
एकता में
कहीं
चित्त बसाये
...हमारे लिए तीन
जो तुम्हारे लिए एक...

मौन शांति दृष्टि से
क्या अवलोकन करते
जाने क्या अवलोकन करते
कौन-सी कविता लिखते
किस नये कास्मिक विद्रोह और
निर्माण की !

"...आकाशे दामामा बाजे..."
विद्रोही !
क्या अब भी दामामे बज रहे है
—और किस आकाश में

*क़ाज़ी नजरुल इस्लाम के निधन पर।

किन-किन धरतियों के ऊपर
　　मानव हृदयो में
　　　　दमामे बज रहे हैं ? !
'चेंल ! चेंल ! चेंल !" शुन, शुन,
　　　　　　　　　　　　शुन !
वह शोकगीत के दामामे हैं शायद :
मगर उनकी चोट कैसी कड़ी है,
　　　विद्रोही !
न, न, न !
वो शोकगीत के न होंगे,
विजय के ही होंगे निरंतर
　　　　सदा की तरह !

क्यों तुम बोल न उठे
　　यकायक कभी ?

इतना कुछ हो गया
　　दुनिया में
हीरोशिमा नागासाकी ही नहो
पूरा वियतनाम
पूरा चीन
पूरा अफ्रीका
पूरी अरब दुनिया
—ये सब
　　मानव चेतना के इतिहास में

व्याप्त हो गया :
हम अपनी साँस में
इन सबको जीते हैं।
...और तुम ? !
युद्ध समाप्त हुआ
जिसमें से और
भीषणतर युद्ध
आरम्भ हुए;
पश्चिम का दानवी रूप
प्रकट हुआ;
तीसरी दुनिया ने जन्म लिया
और आँखें खोलीं...!

यहूदियों अरबों ईसाइयों
की आने वाली क़यामत
अभी फट तो नहीं पड़ी है
इस धरती के सर पर,
मगर इसी विस्फोट के लिए
प्राण-पन से
अमरीका
निरंतर अहर्निश
घोर अभ्यास कर रहा है !

तुम्हें खबर नहीं ?
तुम अपने...

अपने सुदूर
विद्रोही अवचेतन में
कौन से महाकाव्य की
मूक रचना करते रहे,
नजरूल,
जो तीनों दुनियाओं के
उत्तुंगतम थपेड़े तुम्हें
उठा नहीं पाये
तुम्हारी सहज समाधि से ?

अब तुम उसी
मूक महाकाव्य के साथ
हमारी सबकी
प्यारी धरती में
सहज ही समाधिस्थ
हो गये हो
धरती को अपनी
चेतना से
अधिक उर्वरा
करने।

नहीं जानता अभी
इतिहास में क्या-क्या
गुल खिलेंगे
दायीं ओर से, बायीं ओर से,

कि और उनके बीच से…!
गुल

तूफ़ानों से भीगे
और बड़े गुट्ठल और कड़े
जैसे मध्य अमरीका
के बयाबानों में होते हैं
कैक्टाई
कड़े नसों वाले कैक्टस
रंग-बिरंगी
कठोर काँटेदार
सुर्ख़ और हरे और सफ़ेद
और हीरे-नीलम-से
निर्गंध चमत्कार-से।

और…गुल
देशों-देशों के
अक्षांशों को
अपनी सुगंध से मस्त बनाते हुए
सुर्ख़ गुलाबों का
एक उभरता दरिया
सुर्ख़ गुलाबों के शिशु-मुख
उल्लास से तमतमाये हुए
आनन्द में नहाये हुए
अनेक

ऊर्जाओं की
हारमनी से संगीतमय,
मानो
अपने नृत्य-दोल से
प्यारी मासूम
धरती को
उद्वेलित किये हुए
दूर तक गुलाबों का
एक ओर छोरहीन दरिया

अरे नजरूल !
...तुम हमारे बीच में
थे न अब तक
—मगर हमें तो
अब पता चला
कि तुम हमारे ही बीच में
थे अब तक :
तुम्हारी अतिशय-अतिशय
मध्यम गुमसुम
तुम्हारा शांत महाकाव्य
हमें बेमालूम तौर से
—अपना सांस जैसे
सहज संगीत में
लिए हुए था
अब तक

और कहते—

क्या कोई अन्तर आ गया है?
और है देखो
अनुभव करो
क्या कोई अन्तर
आ रहा है?

जहाँ तुम थे
अब भी वहीं हो
इस मौन में
अजब सुनसान है
—हाँ, यह पहले नहीं
थी :
इस मूकता में
एक गजब बहार-सी है
तुम्हारे युगयुगीन
विद्रोही तराने की
—जो अभी से पहले
इतनी आबोताब
लिए हुए नहीं था!

याद है, याद है

याद है,
गुरुदेव ने कहा था?
"भाई नजरुल!

तुम्हारे विद्रोही संग्रह की;
पहली ही
कविता को
मैं लगातार तीन दिन तक
पढ़ता रहा
और उसी से
मेरे जिन गीतों ने
जन्म लिया है
उन्हें ही तुम्हें
इस कारागृह में भेंट देने के लिए
स्वयं तुम्हारे सम्मुख
आ खड़ा हुआ हूँ
इन्हें स्वीकार कर
मुझे धन्य करो !
तुम एशिया की महाशक्ति हो, भाई !"
और तुमने क्या कहा था,
याद है ?
"गुरुदेव,
तुम सचमुच गुरुदेव हो !"

एक महाकवि
कारा के बाहर
और एक कारा के भीतर :
तुम्हारी वाणी ने

दोनों के संगीतों को
—एक कारा के भीतर के
—एक बाहर के
—दोनों संगीतों के
स्वरों को
कहाँ केन्द्रीभूत कर दिया था !?

तुम्हारा मौन मुझे बहुत अखरता है !

बहुत भारी व्यंजना लगता है
बहुत स्थायी
...और फिर भी इतिहास
की धड़कन में चुपचाप
निरंतर बजता हुआ
मैं तुम्हें सुनता हूँ
और देखता हूँ
सरों की नोकीली काली हरी क़तारों में—
जहाँ भी धान का कोई
एक दाना है, वहाँ—
जहाँ भी कोई बात
"शोनार" और "शोणित" से
शुरू होगी
वहाँ तुम हो
अचल
सर झुकाये

एकटक सामने से
देखते
न देखते हुए
मूक
मौन
मुखर
तीनों भौतिक देशों
की आंतरिक एकता में
मुखर
अचल
मूक
स्तंभवत्
अशोकवत्
तीनों देशों के युद्ध
वैमनस्य
नाना योजनाओं के
परे
दृढ़, अचल,
एक-रूप जैसे कि…
…हाँ अल्लाह एक है
जैसे कि
उसकी मखलूक
यह प्यारी दुनिया
हम-तुम
एक हैं !

इस एकता को
अपनी भवों में उठाये
अपनी आँखों में
एक पवित्र सपने की तरह आँजे
बैठे हो
अब भी बैठे हो
हमारी आँखों के सामने
हमारे हृदय आज
ढाका की उस
पावन धरती पर
श्रद्धा और प्रेम के
फूल बन कर
अर्पित हो रहे हैं
चारों ओर से
ओ
कविमनीषी !
ओ हमारी
सोने की मिट्टी के प्राण !
ओ हमारे प्राणों के
अमर विद्रोही !
और हमारी विश्व-शान्ति के
अमर समायोजक !
—जो मौन मूक और
भुलाया हुआ-सा है

वही
हमारे साथ
सांस लेता भी रहा है
हम भी उसके साथ
        बराबर निरन्तर
सांस लेते रहे हैं
        और अब भी
उसकी सांस
हमारी सांस में
इतिहास बनती हुई
चल रही है !

लेनिनग्राद

सफ़ेद आरोरा[1] नीली-ग्रे रिमझिम में खड़ा है
स्मोल्नी[2] ख़ामोश है
कोई मेरे कान में धीरे से कह रहा है
यह पावन धरती है
तमाम इमारतें इतिहास हैं सांस-सा रोके हुए
यह रिमझिम एक ख़ामोश प्रार्थना है
यह धरती इन्क़लाबों की माँ है
जो हमें प्यार से तक रही है
प्यार से, सजग और मौन
एक आशीर्वाद की तरह।

[अक्टूबर १९७७, लेनिनग्राद]

१. जहाज जिसके नाविकों ने क्रान्ति की शुरूआत की।
२. कान्वेन्ट स्कूल जिसको लेनिन ने क्रान्ति-संचालन के लिए अपना कार्यालय बनाया।